Q(1.) मातृभाषा क्या है? मातृभाषा शिक्षण का अर्थ, स्वरूप एवं महत्व की विवेचना कीजए।

Ans:- मातृभाषा - बच्चा जिस क्षेत्र में जन्म लेता है उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा मातृभाषा कहलाती है या फिर माता-पिता द्वारा बोली जाने वाली भाषा मातृभाषा कहलाती है।

मातृभाषा - शिक्षण का अर्थ :- बच्चा जब तक अपने घर में रहता है तो वह अपने ज्ञान में वृद्धि नहीं कर सकता। किन्तु फिर भी यात्रा, भ्रमण, वार्तालाप आदि के द्वारा अशिक्षित व्यक्ति भी अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकता है लेकिन जब तक बच्चा विद्यालय में प्रवेश नहीं लेगा तब तक उसका ज्ञान संकुचित रहेगा। जब बच्चा विद्यालय में जाएगा तो उसके ज्ञान में परिवर्तन होगा। विद्यालय में जाकर बच्चा अपनी मातृभाषा के माध्यम से अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु ज्ञान देने की यह भाषा कौन सी हो, इस पर विद्वानों में मतभेद है अधिकांश शिक्षा-शास्त्रियों का कहना है कि ऐसी अवस्था में बालक को उसकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षित किया जाना चाहिए। अतः यहाँ पर मातृभाषा-शिक्षण से तात्पर्य उस शिक्षण से है जो बालक के ज्ञान-भंडार में वृद्धि करने के लिए उसी उसकी मातृभाषा के माध्यम से दिया जाता है।

अतः कहा जा सकता है कि मातृभाषा-शिक्षण से तात्पर्य उस मानक व परिनिष्ठित क्षेत्रीय भाषा से है जो शिक्षण के लिए प्रयुक्त होती है तथा विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ रहे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उस भाषा का विस्तृत ज्ञान अनिवार्य है।

मातृभाषा-शिक्षण का स्वरूप :-

(1) मातृभाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो क्षेत्र विशेष में बोली जाती है। जिसकी कई बोलियाँ या उपबोलियाँ तो हो सकती हैं, परन्तु उन सभी में अत्यधिक समानता होती है।

(2) मातृभाषा-शिक्षण में मूल रूप से बालक को मातृभाषा के शुद्ध रूप का प्रयोग करने में सहायता बनाया जाता है।

(3) मातृभाषा-शिक्षण से छात्र में सृजनात्मक प्रवृत्तियों का जन्म होता है।

(4) मातृभाषा-शिक्षण समाज के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य माना जाता है।

(5) अपने लिखित रूप में भाषा सदा स्थायी रह सकती है।

(6) भाषा मूल रूप से मौखिक साधन है।

(7) भाषा चिन्हात्मक है।

(8) भाषा निरन्तर गतिशील एवं परिवर्तनशील है।

⑨ भाषा मनुष्य को जन्म से प्राप्त नहीं होती अनुकरण से सीखी जाती है।
⑩ भाषा का सभ्यता के साथ संबंध होता है।

मातृभाषा - शिक्षण का महत्व :—

मातृभाषा भी उतनी ही वन्दनीय होती है जितनी की माता व मातृभूमि। वह बच्चे की शिक्षा का आधार बनाती है। भले ही हमारी शिक्षा का उद्देश्य कुछ भी हो, उस उद्देश्य की प्राप्ति में मातृभाषा का सहयोग सर्वोपरि होता है। बालक के सम्पूर्ण विकास के लिए मातृभाषा का ज्ञान अत्यंत आवश्यक होता है, मातृभाषा के ज्ञान के अभाव में शिक्षा का विकास नहीं हो सकता। अतः मातृभाषा - शिक्षण के महत्व का विकास और भी बढ़ जाता है।

① ज्ञान प्राप्ति का महत्व - मातृभाषा ज्ञान प्राप्ति में अहम् भूमिका निभाती है, क्योंकि बच्चा जो कुछ भी पढ़ना, लिखना, बोलना सीखता है वह सबसे पहले अपनी मातृभाषा के माध्यम से सीखता है।

② मानसिक विकास का महत्व - उचित वातावरण व मातृभाषा में दी जाने वाली शिक्षा ही बालक के मानसिक विकास में पूर्ण रूप से सहयोगी सिद्ध होती है। निश्चय ही बालक के लिए जहाँ भी अच्छा वातावरण होगा वहां उसे मातृभाषा का अधिक से अधिक परिवेश मिलेगा।

③ नैतिक विकास का महत्व — मातृभाषा नैतिक विकास को भी विकसित करती है। मातृभाषा में कहानियों, नाटकों तथा साहित्य एवं ऐतिहासिक, पौराणिक, महापुरुषों की वीरतापूर्ण कहानियाँ हमारे नैतिक विकास को बढ़ावा देती है। मातृभाषा साहित्य में इन सब गतिविधियों की भरमार है।

④ शिक्षा-प्राप्ति में सर्वोत्तम साधन - शिक्षा प्राप्ति में मातृभाषा की अहम् भूमिका है इसलिए इसे शिक्षा प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन कहा गया है। शिक्षा प्राप्ति के समय अन्य विषयों की भाँति मातृभाषा माध्यम का कार्य करती है।

⑤ राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सहायक — मातृभाषा सामाजिक व राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सक्षम है। किसी भी व्यक्ति में आदर्श नागरिक के गुणों का समुचित विकास करने में मातृभाषा का महत्व का बड़ा योगदान है।

⑥ व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का महत्व — मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से ही बालक का सर्वांगीण विकास हो सकता है सर्वांगीण विकास जैसे - शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भावात्मक इत्यादि गुणों का विकास मातृभाषा द्वारा ही संभव है। इन सब गुणों का विकास करने में मातृभाषा (हिन्दी) का योगदान सर्वाधिक सत्य है।

Q (2.) देवनागरी लिपि की विशेषतायें एवं सीमाएँ बताइए।

Ans :- देवनागरी एक लिपि है जिसमें अनेक भारतीय भाषाएँ तथा कुछ विदेशी भाषाएँ ~~लिखी~~ लिखी जाती है। देवनागरी बायें से दायें लिखी जाती है, इसकी पहचान एक क्षैतिज रेखा से है, जिसे 'शिरोरेखा' कहते हैं। संस्कृत, हिन्दी, पाली, मराठी, कोंकणी, सिन्धी, कश्मीरी, नेपाली तथा अन्य उप भाषायें गढ़वाली, बोडो, भोजपुरी, मैथिली, संथाली आदि भाषा देवनागरी में लिखि जाती है।

देवनागरी शब्द की उत्पत्ति :- देवनागरी या नागरी नाम का प्रयोग क्यों प्रारंभ हुआ इसके उत्पत्ति का कारण क्या था अब तक पूर्णतः निश्चित नहीं है।

(क) यह भी हो सकता है कि 'नागर' जन इसमें लिखा करते हो, अतः 'नागरी' अभिधान पड़ा और जब संस्कृत के ग्रंथ भी इसमें लिखे जाने लगे तब ('देवनागरी' भी कहा गया।

(ख) सांकेतिक चिन्हों या देवताओं की उपासना में प्रयुक्त त्रिकोण, चक्र आदि संकेतचिन्हों को 'देवनागर' कहते थे। कालांतर में नाम के प्रथमाक्षरों का उनसे बोध होने लगा और जिस लिपि में उनको स्थान मिला - वह 'देवनागरी' या नागरी कही गई। इन सब पक्षों के मूल में कल्पना का प्राधान्य है, निश्चयात्मक प्रमाण अनुपलब्ध है।

देवनागरी लिपि का इतिहास :- भारत देवनागरी लिपि की क्षमता से शताब्दियों से परिचित रहा है। डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार सर्वप्रथम देवनागरी लीपि का प्रयोग गुजरात के नरेश जयभट्ट (700-800 ई०) के शिलालेख में मिलता है। आठवीं शताब्द में चित्रकूट, नवीं में बड़ौदा के ध्रुवराज भी अपने राज्यदेशों में इस लिपि का उपयोग किया करते थे।

कनिंघम की पुस्तक में सबसे प्राचीन मुसलमानों के सिक्के के रूप में महमूद गजनवी द्वारा चलाये गए चाँदी के सिक्के का वर्णन है जिस पर देवनागरी लिपि में संस्कृत अंकित है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से देवनागरी लिपि :- भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से देवनागरी लिपि अक्षरात्मक लिपि मानी जाती है। लिपि के विकास-सोपानों की दृष्टि से ('चित्रात्मक', 'भावात्मक' और 'भावचित्रात्मक' लिपियों के अनंतर 'अक्षरात्मक' स्तर की लिपियों का विकास माना जाता है। 'देवनागरी' को अक्षरात्मक लिपि इसलिए कहा जाता है

इसके वर्ण अक्षर है - स्वर भी और व्यंजन भी।
वैज्ञानिक लिपि की कसौटी :- वैज्ञानिक लिपि की तुला के अनुसार किसी भी भाषा की लिपि के लिए मुख्यत: तीन बातें आवश्यक है - (क) भाषा में जितनी उच्चारण-ध्वनियाँ हो उन सबके लिए अलग-अलग लिपिचिन्ह हो।
(ख) प्रत्येक लिपिचिन्ह द्वारा केवल एक उच्चारणध्वनि का बोध हो और
(ग) एक उच्चारणध्वनि का बोध करनेवाला केवल एक ही लीपिचिन्ह होना चाहिए।

विश्व की अनेक प्रमुख लिपियों में ध्वनीयों के नाम भिन्न है और उनके उच्चारणात्मक ध्वनिमूल्य भिन्न है। जैसे - 'h' का नाम 'एच' है और प्राय: उच्चारण 'ह' होता है। देवनागरी में दोनों में कोई अंतर नहीं है। इसकी वर्णमाला का वर्णक्रम अत्यंत वैज्ञानिक है। ध्वनियों का वर्गीकरण क्रम भी बड़ा वैज्ञानिक है।
① आरंभ में स्वरध्वनियाँ -(अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः) है
② तदनंतर स्थानानुसारी वर्णक्रम में 27 स्पर्श व्यंजन है -(कवर्ग - क, ख, ग घ ङ., च वर्ग - च छ ज झ ञ, टवर्ग - ट ठ ड ढ ण, तवर्ग - त, थ, द, ध, न, पवर्ग - प, फ ब, भ, म)
③ तत्पश्चात अंतस्थ - (य, र, ल, व.)
④ तदनंतर ऊष्म ध्वनियाँ - (श, ष, स और ह) है।
निम्नलिखित गुणों के कारण देवनागरी वैज्ञानिकता की कसौटी पर खड़ी उतरती है - (a) एक ध्वनी को निरुपित करने के लिए केवल एक सांकेतिक चिन्ह प्रयोग किया जाता है।
(b) एक सांकेतिक चिन्ह के संगत केवल एक ध्वनि निकलती है।
कुछ कमियाँ :- उपरोक्त कसौटी के अनुसार देवनागरी लिपि में कुछ मामूली कमियाँ दिखती है -
(1) 'र' के कई रूप प्रयुक्त होते है। - जैसे - राम, प्रथम, राष्ट्र, धर्म आदि।
② कुछ संयुक्ताक्षरों को लिखने के कई रूप प्रचलित है।
③ क्ष, त्र, ज्ञ, श्र आदि संयुक्ताक्षर को वर्णमाला से हटाया जा सकता है क्योंकि अन्य संयुक्ताक्षरों के लिए स्वतंत्र प्रतीक नहीं है।

फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि परंपरागत सभी अन्य लिपियों की अपेक्षा देवनागरी लिपि अधिक पूर्ण और अधिक वैज्ञानिक है।

(1)(3.) मातृभाषा एवं राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी भाषा का महत्व बताइए।

Ans:- हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितंबर 1949 ई० को स्वीकार किया गया। इसके बाद संविधान में राजभाषा में धारा 343 से 352 तक की व्यवस्था की गई। इसकी स्मृति को ताजा रखने के लिए 14 सितंबर को प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। धारा 343(1) के अनुसार भारतीय संघ की राजभाषा हिन्दी एवं लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप अर्थात् (1,2,3 आदि होगा)

संसद का कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जा सकता है परन्तु राज्यसभा के सभापति महोदय या लोकसभा के अध्यक्ष महोदय विशेष परिस्थिति में सदन के किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकते हैं। (संविधान का अनुच्छेद 120) किन प्रयोजनों के लिए केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाना है, किन के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है और किन कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषाओं का प्रयोग किया जाना है, यह राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा नियम 1976 और इसके अंतर्गत समय-समय पर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की ओर से जारी किए गए निदेशों द्वारा निर्धारित किया गया है।

हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने का औचित्य :-

हिन्दी को राजभाषा का सम्मान कृपापूर्वक नहीं दिया गया, बल्कि यह उसका अधिकार है। केवल राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी द्वारा बताये गये निम्नलिखित लक्षणों पर दृष्टि डाल लेना पर्याप्त होगा, जो उन्होंने एक 'राष्ट्रीय भाषा' (से अभिप्राय राजभाषा से ही है) के लिए बताये थे:-

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार हो सकना चाहिए।
3. यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।
4. राष्ट्र के लिए भाषा आसान होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्प स्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

Q (4.) उच्चारण शिक्षण का महत्व को बताते हुए, उच्चारण के दोषों की विवेचना कीजिए।

Ans. - भारत एक हिन्दीभाषी क्षेत्र है यहाँ पर अनेक भाषाएँ बोली जाती है परन्तु हिन्दी राष्ट्र भाषा होने के साथ-साथ यह हमारी मातृ-भाषा भी है। हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा घोषित करने के बावजूद भी यहाँ लोग अन्य भाषायें बोलते हैं। हम देखते हैं कि भारत के एक बड़े भू-भाग पर हिन्दी बोली जाती है परन्तु इसके उच्चारण में भी काफी कमियां हैं। हम जो बोलते हैं उसे लिखते नहीं हैं या जो लिखते हैं उसे बोलते नहीं हैं। ~~हमें~~ हिन्दी उच्चारण में हमें काफी ज्यादा कमियों को सहन करना पड़ता है। यह भारत की विडंबना है कि भारत एक हिन्दी प्रधान देश है फिर भी हिन्दी के उच्चारण में हमें अनेक त्रुटियों का सामना करना पड़ता है। हिन्दी भाषा के उच्चारण को शुद्ध बनाने के लिए सबसे पहले हिन्दी अध्यापक का कर्तव्य बनता है कि वह छात्रों को उच्चारण दोषों को दूर करे, उन्हें शुद्ध शब्द, वाक्य आदि का उच्चारण करना सिखायें। तभी हम अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा को उसका सच्चा अधिकार दिला सकेंगे।

हिन्दी भाषा में अशुद्ध उच्चारण के निम्नलिखित कारण हैं:—

(1) वातावरण का प्रभाव (2) अध्यापक द्वारा अशुद्ध उच्चारण
(3) प्रयत्न लाघव (4) उच्चारण शिक्षा का अभाव
(5) ध्वनि-यंत्र में विकार (6) कुअभ्यास
(7) मनोवैज्ञानिक कारण (8) असावधानी
(9) अज्ञानता (10) पारिवारिक परिवेश में अध्यापक का अभाव।

अतः हिन्दी शिक्षक का कर्तव्य बनता है कि छात्रों को हिन्दी भाषा के उच्चारण में इन त्रुटियों को दूर करना चाहिए तथा इनके निराकरण में जो उपाय सामने आए हैं उनसे छात्रों को परिचित कराना चाहिए तभी हम हिन्दी के शुद्ध उच्चारण को बोल तथा लिख सकते हैं।

अक्षर-विन्यास :— साधारण शब्दों में अक्षर को उत्कीर्ण करना ही अक्षर-विन्यास है। भाषा को लिखित रूप प्रदान करने के लिए जिन प्रतीकों या चिन्हों का प्रयोग किया जाता है। मन के भावों, विचारों आदि को लिखित रूप में प्रकट करने

के लिए उन निर्धारित प्रतीकों का प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु इनका प्रयोग उस भाषा के व्याकरण - नियमों के अनुरूप होता है। अतः हिन्दी भाषा में अक्षर - विन्यास से तात्पर्य देवनागरी लिपि के अनुरूप तथा व्याकरण के नियमों को ध्यान में रखते हुए शब्दों को शुद्ध रूप से लिखना है। दूसरे शब्दों में इसे वर्तनी भी कहा जाता है।

विराम चिन्ह – भाषा के दो रूप होते है - मौखिक व लिखित। जब हम बोलते है तो बोलते समय हमें अपने विचारों, भावों के अनुसार वाक्य में आरोह, अवरोह, स्वराघात, विराम लेकर ही वाक्य का प्रयोग करते है इन आरोह, अवरोह, विराम आदि से हम अपने भावों को अधिक स्पष्टता के साथ व्यक्त कर सकते है। परन्तु भाषा के लिखित रूप में हमारे पास वह सुविधा नहीं होती। फलतः भाषा के लिखित रूप में विराम, अल्प विराम, आदि को दर्शाने के लिए हम विशेष चिन्हों का प्रयोग करते है ये विशेष चिन्ह ही विराम - चिन्ह कहलाते है।

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले विराम-चिन्हों के प्रकार :—

विराम	चिन्ह
(1) पूर्ण विराम	।
(2) अल्प - विराम	,
(3) अर्द्ध - विराम	;
(4) अपूर्ण - विराम (विवरण चिन्ह)	: :-
(5) प्रश्न - विराम	?
(6) विस्मय विराम	!
(7) निर्देशक	—
(8) योजक / संबंध चिन्ह	-
(9) अवतरण / उद्धरण	', " "
(10) लोप विराम / वर्जन चिन्ह	....
(11) लाघव / संक्षेप सूचक	o
(12) त्रुटि विराम / हंसपद	^, ʎ
(13) कोष्ठक	( ), { }, [ ]
(14) तुल्यता सूचक - चिन्ह	=
(15) तारक - चिन्ह	*** *** , xxxxx

अतः इस प्रकार हम कह सकते है कि हिन्दी भाषा में विराम चिन्हों का अत्यधिक महत्व है। इनके बिना हिन्दी भाषा के लिखित रूप में भाषा के शुद्ध लिखने का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

Q (5.) पाठ योजना का अर्थ है? पाठ-योजना के महत्व बताते हुए इसकी रूपरेखा तैयार कीजिए।

Ans :- हमें किसी भी कार्य को सम्पन्न करने से पहले एक योजना बनानी पड़ती है। ठीक उसी प्रकार से एक शिक्षक को कक्षा-कक्ष में शिक्षण करने से पहले यह सुनिश्चित करना होता है कि आज हम किस विषय का कौन सा उपविषय पढ़ायेंगे, पढ़ाने से पहले शिक्षक एक योजना बनाकर उस उपविषय को इकाईयों में बाँटकर एक पाठ-योजना रूपरेखा तैयार करता है जिससे शिक्षक को शिक्षण करते समय कठिनाईयों का सामना न करना पड़े। उसे ही पाठ-योजना कहते हैं। भावी शिक्षकों को उनके शिक्षण-प्रशिक्षण के दौरान पाठ-योजना को लिखित रूप में तैयार करने के लिए भी प्रशिक्षित किया जाता है।

विनिंग और विनंग के अनुसार -" दैनिक पाठ-योजना के निर्माण में उद्देश्यों को परिभाषित करते हुए पाठ्य-वस्तु का चयन करना, उसे क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित करना, प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया का निर्धारण करना है।"

डेविस -" कक्षा में प्रवेश करने से पहले शिक्षक को पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि पाठ-योजना को सभी विद्वानों ने महत्वपूर्ण माना है।

पाठ योजना का महत्व :-

डेविस के अनुसार -" किसी भी शिक्षक के लिए कोई भी वस्तु इसी घातक नहीं है जितनी की पाठ-योजना की तैयारी का कम होना" उनका यह कथन पाठ-योजना की आवश्यकता और उसके महत्व को स्पष्ट करता है :-

(1) शिक्षण-प्रक्रिया के दौरान आयोजन, नियोजन, नियंत्रण आदि निर्णयों को उपयोगी बनाने के लिए तथा उन्हें प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करने के लिए पाठ-योजना बहुत महत्वपूर्ण है।

(2) पाठ-योजना से शिक्षक में आत्मविश्वास आता है।

(3) पाठ-योजना से शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया को सार्थक बना सकता है।

(4) शिक्षक पाठ-योजना के निर्माण से शिक्षण व पाठ्य विषय से

संबंधित सभी पहलों पर समुचित निर्णय ले सकता है।
(5) पाठ्य-वस्तु के लक्ष्यों का निर्धारण करने व उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक सामग्री के प्रयोग के संदर्भ में भी पाठ-योजना का अपना विशिष्ट महत्व है।
(6) पाठ-योजना से शिक्षक को विषय संबंधी जानकारी प्राप्त होती है।
(7) शिक्षक पाठ को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत कर सकता है।
(8) शिक्षण में से तर्कहीनता, असंगतता या विसंगतियों, क्रमहीनता आदि को निकालकर दूर करने में पाठ-योजना महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
(9) शिक्षक में धैर्य, परिश्रम करने की प्रवृत्ति तथा संयम आदि गुणों का विकास करने में भी पाठ-योजना का विशिष्ट महत्व है।
(10) पाठ-योजना कक्षा में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का मूल्यांकन करने में भी महत्वपूर्ण है।

पाठ-योजना की रूपरेखा :—

वैसे तो पाठ-योजना की रूपरेखा के संदर्भ में हरबर्ट, क्लूम आदि विद्वानों ने अपने-अपने विचार प्रयुक्त किए हैं परन्तु इस संबंध में हरबर्ट के विचार ही अधिक मान्य है। उन्होंने पाठ-योजना में पाँच सोपानों या पाँच पदी प्रणाली को प्रस्तुत किया है जो कि निम्नलिखित है—

(क) योजना (ख) प्रस्तुतिकरण (ग) तुलना व समरूपता
(घ) सामान्यीकरण (ङ) प्रयोग।

(क) योजना — इस स्तर पर शिक्षक पाठ-विषय की पूरी योजना बना लेता है, जिससे छात्रों तथा शिक्षक को शिक्षण करते समय किसी कठिनाईयों का सामना न करना पड़े।

(ख) प्रस्तुतीकरण :— इस स्तर पर शिक्षक कक्षा में छात्रों के पूर्व संचित ज्ञान व अनुभव को पाठ्य-सामग्री से जोड़कर नए पाठ की प्रस्तावना रखता है। यह प्रस्तुतिकरण या तो बोध-प्रश्नों द्वारा या फिर विकासात्मक प्रश्नों द्वारा किया जा सकता है।

(ग) तुलना एवं समरूपता — इस स्तर पर शिक्षक छात्रों द्वारा पूर्व संचित ज्ञान, अनुभव तथा नए पाठ की विषय वस्तु से तुलना करवाता है तथा उन दोनों में समानता की खोज करवाता है।

(घ) सामान्यीकरण - इस स्तर पर छात्र पूर्व ज्ञान व नए विषय के तथ्यों में अधिकाधिक समानता खोजकर एक सामान्य नियम निकालने का प्रयास करते हैं।

(ङ) प्रयोग - इस स्तर पर शिक्षक कक्षा में छात्रों के समक्ष ऐसे प्रश्न रखता है जिससे वे सीखे हुए नए ज्ञान का प्रयोग करने में समर्थ हो सकें।

Q(6.) सूक्ष्म शिक्षण क्या है? एवं इसकी विभिन्न कौशलों का विस्तार से वर्णन करें।

Ans:- सूक्ष्म का अर्थ है - कम, थोड़ा, न्यूनतम। तथा शिक्षण का अर्थ है-शिक्षण से, प्रशिक्षण से। अर्थात सूक्ष्म शिक्षण का अर्थ - थोड़ा या छोटा शिक्षण। सबसे पहले हम अत्यधिक शिक्षण न करके थोड़ा शिक्षण करना चाहते है। प्रशिक्षण संस्थानों में इस सूक्ष्म-शिक्षण का प्रयोग बहुत गहनता के साथ किया जाता है। आज तकनीकी के युग में अब कार्यरत अध्यापकों व भावी शिक्षकों को नई तकनीकी या विधि द्वारा शिक्षा देने के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है, जिसे सूक्ष्म शिक्षण या 'माइक्रोटीचिंग" कहा जाता है।

एलेन -" सूक्ष्म-शिक्षण कक्षा के आकार एवं समय की दृष्टि से एक लघु पैमाने का आयोजित शिक्षण है।"

बी०एम०पोर - " सूक्ष्म शिक्षण कम समय, छात्रों व शिक्षण क्रियाओं वाली वास्तविक शिक्षण विधि है।"

अतः इन परिभाषाओं के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि सूक्ष्म-शिक्षण वह है जिस शिक्षण में कम से कम छात्र हो 5, 6, 7 या 8। जिस शिक्षण में कम समय लगे 5 से 6 मिनट या ज्यादा से ज्यादा 7 मिनट। इस प्रकार के शिक्षण को सूक्ष्म शिक्षण कहते है।

सूक्ष्म शिक्षण की विशेषतायें :-

1. यह केवल शिक्षक को प्रशिक्षण देने की विधि है।
2. यह विधि विषय-सामग्री को पढ़ाने का माध्यम नहीं है।
3. इसमें केवल एक समय में एक विषय की केवल एक इकाई को पढ़ाया जाता है।
4. इसमें कक्षा-कक्ष में कम से कम छात्र 5-7 होते है।
5. इसमें शिक्षण अवधि भी अत्यंत सीमित (5-7 मिनट) होती है।
6. इसमें सामान्य शिक्षण के समय उभरने वाली जटिलताओं को दूर करके शिक्षण को सुगम व प्रभावशाली बनाया जाता है।

(क) प्रश्न कौशल

प्रारंभ से ही शिक्षा जगत में पाठ्य सामग्री को स्पष्ट, रोचक तथा सरल बनाने के लिए प्रश्नों को माध्यम बनाया जाता रहा है। इसे प्रश्नोत्तर विधि भी कहते है। शिक्षा देने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम ही प्रश्न करना है। प्रश्न करने से छात्र में जिस कौशल का विकास होता है उससे छात्र अपने व्यवहार को सार्थक कर लेता है तथा अपने

शिक्षण अधिगम में इस व्यवहार को उजागर का अपने शिक्षण को प्रभावशाली बना लेता है। प्रश्न-पृच्छा हर शिक्षक के लिए अनिवार्य है इससे वह अपने छात्रों को कुशल बना सकते हैं।

(ख) उदाहरण कौशल

यह सत्य है कि प्रश्न कौशल द्वारा ही सम्पूर्ण शिक्षा-प्रक्रिया सफलता प्राप्त नहीं कर सकती। इसके लिए और कौशलों में निपुणता प्राप्त करना आवश्यक है। जो पाठ हमें प्रश्न कौशल द्वारा पूर्ण समझ में नहीं आता वह उदाहरण कौशल द्वारा अच्छी तरह समझ आ जाता है। उदाहरण विधि में शिक्षक सूक्ष्म बातों को समझाने के लिए मूर्त पदार्थों को उदाहरण-स्वरूप प्रयुक्त करते हैक्योंकि छात्र मूर्त पदार्थों को भली-भाँति परिचित होते हैं। पिन्सेंट का मत है - "अच्छे उदाहरण जटिल कथन को सजीव बना देते हैं।"

(ग) व्याख्या कौशल

शिक्षण कौशल में प्रश्न कौशल तथा उदाहरण कौशल की तरह एक और कौशल है - व्याख्या कौशल। व्याख्या कौशल के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। विषय के सफल शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि पाठ का विकास किया जाए और यह कार्य व्याख्या कौशल के बिना पूरा नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि शिक्षक को व्याख्या कौशल में भी दक्षता प्राप्त करनी आवश्यक है।

साधारण शब्दों में किसी भी जटिल या गूढ़ भाव आदि को श्रोता या छात्र के पूर्व संचित ज्ञान व अनुभव का सहारा लेकर स्पष्ट करना ही व्याख्या कहलाता है।

(घ) दृष्टांत कौशल

व्याख्या की सहायता से सभी अवधारणाओं को अध्यापक द्वारा समझाना संभव नहीं है। कुछ अवधारणायें अमूर्त होती हैं जिनकी व्याख्या करने के लिए उदाहरणों का प्रयोग किया जाता है।

अर्थ :- 'दृष्टान्त' से तात्पर्य उन सभी सामग्रियों से है जो विद्यार्थियों की अवधारणाओं को स्पष्ट करने में सहायता करती है। इसीत की उपयोगिता ऐसे कौशल पर निर्भर करती है जिससे विषय के कठिन विचारों को सरल रूप में प्रस्तुत किया जा सके। इसका प्रयोग ऐसे पाठों को पढ़ाने के लिए किया जाता है। जिससे जुड़ी वस्तुओं को छुआ या देखा नहीं जा सकता। इस प्रयोग हर स्तर के बच्चों के लिए उपयुक्त है।

अतः हम कह सकते हैं कि दृष्टांतों को प्रभावशाली ढंग से तैयारकरके उचित समय पर बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए।

Page

Q(7.) गद्य शिक्षण से क्या तात्पर्य है? इसके उद्देश्य, महत्व, विधियों एवं सोपानों की चर्चा करें।

Ans। – आधुनिक काल का एक नाम गद्य काल भी है। विज्ञान राजनीति, वाणिज्य, धर्म, अर्थशास्त्र आदि सभी विषय गद्य के माध्यम से जनमानस तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं, यहाँ तक कि सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय आदि कार्य भी गद्य के माध्यम से सम्पन्न हो रहे हैं।– कहा भी गया है कि "गद्य कवियों की कसौटी है" विशेषत: गद्य के माध्यम से ही भाषाई कौशलों का ज्ञान व उसमें दक्षता संभव है। इसी के अध्ययन से छात्रों का चहुँमुखी विकास होता है।

गद्य का अर्थ :– गद्य की उत्पत्ति 'गद्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है – स्पष्ट कहना। जहाँ कविता में कवि भाव को स्पष्ट न कह कर लक्षणों व व्यंजनों से व्यक्त करता है वही गद्यकार भावों को सरल व स्पष्ट रीति से व्यक्त करता है। गद्य में पद्य की भाँति रस, ताल, अलंकार, छन्द आदि की आवश्यकता नहीं होती अर्थात गद्य में व्याकरण सम्मत भाषा की अपेक्षा की जाती है।

अत: सभी भाषाओं में गद्य को सामान्य भाषा में कही गई बात माना गया है। हिन्दी शिक्षण में गद्य का व्यापक महत्व है।

गद्य शिक्षण का महत्व :–

1) दैनिक जीवन में आनेवाली भाषा में स्पष्टता एवं शुद्धता आती है।
2) व्याकरण सम्मत भाषा सीखने में सहायक है।
3) ज्ञानोपलब्धि साधन के रूप में।
4) भावात्मक विकास के लिए।
5) गद्य की शैलियों की जानकारी के लिए उपयुक्त साधन है।
6) भाषिक तत्वों की जानकारी के लिए।

गद्य की विधायें :–

गद्य को शिक्षण की दृष्टि से दो भागों में बाँटा गया है –

1) निबंधात्मक – निबंध, जीवनी, यात्रावृत आदि।
2) कथात्मक – कहानी, नाटक, उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा आदि।

गद्य शिक्षण के उद्देश्य :– इसमें सामान्य व विशिष्ट दो प्रकार के उद्देश्य सभी विधाओं में एक समान रहते हैं किन्तु विशिष्ट उद्देश्य पाठ के अनुसार बदलते रहते हैं।

सामान्य उद्देश्य :–

① शुद्ध उच्चारण, बलाघात व प्रवाह के साथ मौखिक वाचन कराना।
② विराम चिन्हों का ध्यान रखते हुए पढ़ना सिखाना।
③ अर्थ बोध व गति के साथ मौन पाठ करने का प्रशिक्षण देना।
④ मनोरंजन व समय के सदुपयोग के लिए पढ़ने की आदत का विकास करना।

विशिष्ट उद्देश्य :-
① भाषिक तत्वों जैसे - उपसर्ग, प्रत्यय, संधि, समास, शब्दार्थ उच्चारण आदि का ज्ञान कराना।
② विषय सामग्री पाठ में आये केन्द्रित भावों, विचारों तथ्यों आदि का बोध कराना।
③ विचार विश्लेषण या अर्थ ग्रहण में समीक्षात्मक दृष्टि का विकास करना।
④ अभिव्यक्ति - विचारों, भावों को तार्किक क्रम में प्रस्तुत करके व्यक्त करने के योग्य बनाना।

गद्य शिक्षण की विधियाँ :- गद्य साहित्य का सर्वोत्तम रूप है। इसमें विचारों को प्रभावशाली ढंग से व्याकरणसम्मत सर्वमान्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। गद्य की शिक्षा देने के लिए जिन विधियों को विकसित किया गया है, वे निम्न हैं-

① अर्थकथन विधि - विद्यालय में हिन्दी गद्य की शिक्षा देने की यह परम्परागत विधि है। इस विधि में अध्यापक सर्वप्रथम गद्यांशों का क्रमशः रूप से मौखिक पठन कराता है और इसके बाद गद्यांश में आए कठिन शब्दों का अर्थ बताता है और बाद में सभी वाक्यों के शब्दार्थ बताता हुआ सम्पूर्ण गद्यांश का अर्थ स्पष्ट कर देता है।

② व्याख्या विधि - व्याख्या विधि अर्थकथन विधि का ही विकसित रूप है। इस विधि में अध्यापक मौखिक पठन कराने के उपरान्त कठिन शब्दों का अर्थ व गद्यांश का शब्दार्थ कराते हुए शब्दों और भावों की व्याख्या भी करता है।

③ प्रश्नोत्तर विधि :- इस विधि को विश्लेषण विधि भी कहा जाता है। इस विधि में व्याख्या विधि की तरह ही शब्दों और भावों की व्याख्या की जाती है अंतर इतना है कि इसमें शब्दों और भावों की व्याख्या करने के लिए प्रश्न व उत्तर की सहायता ली जाती है।

④ समीक्षा विधि :- इस विधि का प्रयोग उच्च माध्यमिक या उच्च कक्षाओं में किया जाता है। इस विधि का प्रयोग तभी करना चाहिए जब बच्चों को निबंध के तत्वों का ज्ञान, और भाषायी कौशलों में विकास पूरी तरह से हो जाए। इस विधि में पाठ्यवस्तु का पठन कर भाषायी तत्वों के आधार पर उसके गुण-दोष की परख की जाती है।

⑤ संयुक्त विधि :- माध्यमिक स्तर पर इन सभी प्रणालियों का आवश्यकतानुसार मिश्रित रूप से प्रयोग करके भी हम गद्य शिक्षण को प्रभावशाली बना सकते हैं। भाषायी कौशल एवं ज्ञान प्रदान करने के लिए व्याख्या एवं विश्लेषण - प्रणाली को संयुक्त रूप से अपनाया जाए।

Q(8.) व्याकरण से क्या तात्पर्य है? इसके उद्देश्यों, महत्व, विधियों एवं सोपानों का वर्णन करें।

Ans:- व्याकरण की शिक्षा के बिना भाषा की शिक्षा कभी पूर्ण नहीं होती है। व्याकरण ही वास्तव में भाषा का शासक होता है। व्याकरण के नियमों का पालन न करने से भाषा उच्छृंखल हो जाती है।

व्याकरण क्या है अथवा व्याकरण की परिभाषा

व्याकरण शब्द वि + आ + कृ धातु + ल्युट् + प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्द अनेनेति व्याकरणम्' अर्थात् जिस के द्वारा अर्थ स्वरूप से शब्दों की विवेचना होती है। व्याकरण शब्दों के प्रयोग का अनुशासक है।

① महर्षि पाणिनी ने इसे 'शब्दानुशासन' कहा है। व्याकरण का अध्ययन भाषा के शुद्ध प्रयोग के लिए किया जाता है।

② महर्षि पतंजली ने भी अपने महाभाष्य में इसे 'शब्दानुशासन' ही कहा है

③ जेस्पर्सन ने 'प्रचलित भाषा संबंधी नियमों की व्याख्या' को व्याकरण माना है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्याकरण का उद्देश्य भाषा सिखाना नहीं, अपितु भाषा के संबंध में निम्न बातों का ज्ञान कराना है:-

① भाषा रचना का ज्ञान कराना।
② वाक्यों में आए शब्द-समूहों के अंतर को स्पष्ट करना।
③ भाषा संबंधी कुछ विशेष प्रयोगों का अध्ययन कराना
④ भाषा से संबंधित नियमों का कथन करना।

भाषा शिक्षण में व्याकरण का महत्व

① कुछ विद्वानों के अनुसार भाषा शिक्षण का कार्य व्याकरण के बिना अपूर्ण है।
② व्याकरण भाषा का मित्र एवं सहचार है जो उसे सदैव - सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। अतः व्याकरण का ज्ञान भाषा के शुद्ध प्रयोग के लिए है।
③ व्याकरण के सहयोग से शुद्ध लिखना और बोलना सरलता से आ जाता है।
④ व्याकरण की शिक्षा भाषा की शिक्षा का एक आवश्यक अंग है।

वस्तुतः भाषा को शुद्ध बनाये रखने का काम व्याकरण द्वारा ही सम्पन्न होता है।

व्याकरण की शिक्षा के उद्देश्य

① भाषा का शुद्ध रूप पहचानने में छात्रों को समर्थ बनाना ही व्याकरण का उद्देश्य है।

(2) व्याकरण के ज्ञान से छात्र भाषा के गुणों व दोषों को पहचानने लगते हैं।
(3) व्याकरण भाषा के स्वरूप की रक्षा करता है।
(4) व्याकरण का उद्देश्य भाषा को संयमित और नियंत्रित करना है।
(5) भाषा के नियमों का विधिवत ज्ञान व्याकरण के द्वारा ही संभव हो सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि व्याकरण का प्रमुख उद्देश्य भाषा का शुद्ध एवं समुचित प्रयोग करना सिखाना है। यह साधन है साध्य नहीं।

व्याकरण की शिक्षण - प्रणालियाँ

व्याकरण की शिक्षा देने के लिए अनेकों विधियाँ प्रचलित हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण विधि निम्न हैं। —

(1) निगमन विधि - इसे रटंत विधि भी कहते हैं। इस प्रणाली के अनुसार व्याकरण के नियम ..... के रूप में रटा दिये जाते हैं। फिर उनके उदाहरण देकर उनका प्रयोग बताया जाता है। संस्कृत व्याकरण पढ़ाने के लिए प्राचीनकाल से अब तक यही प्रणाली प्रयुक्त होती है।
निष्कर्ष - यह विधि अमनोवैज्ञानिक तथा नीरस है। यह बच्चों पर अनावश्यक दबाव डालती है। बालक बिना समझे ही नियमों को रट लेते हैं। अतः यह विधि दोष युक्त है।

(2) आगमन विधि :- इसे प्रयोग विधि भी कहा जाता है। यह विधि सूत्र-प्रणाली से सर्वथा विपरीत है। यहाँ पर व्याकरण की परिभाषायें तथा नियम आदि बालकों द्वारा रटवाये नहीं जाते। नियम आदि विद्यार्थियों से ही निकलवाये जाते हैं। उनके सामने पर्याप्त संख्या में उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। इन उदाहरण के माध्यम से नियम या सिद्धान्त की रचना की जाती है।
निष्कर्ष - यह विधि सबसे अच्छी मानी गई है क्योंकि इसमें शिक्षण की अपेक्षा सीखने की भावना अधिक है।

(3) खेल विधि - छोटी कक्षाओं में इस विधि को बड़ी सफलता से अपनाया जा सकता है। इस विधि को व्याकरण की रोचकता ढंग से शिक्षा प्रदान करने की विधि कहा जा सकता है। खेल-खेल में व्याकरण सिखाने से व्याकरण की नीरसता कम हो जाती है। कुछ नियमों या सिद्धांतों को भी आसानी से जाना जा सकता है। खेल-खेल में लिंग भेद, वचन आदि का ज्ञान कराया जा सकता है। कुछ एक नवीन पाठ्य-विधियों में भी इस विधि को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसके लिए अध्यापक को यथेष्ठ प्रयत्न करना पड़ता है।

अतः हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त सभी विधियाँ गुण-दोष युक्त हैं। कोई एक विधि अपने आप में पूर्ण नहीं है। किसी एक का स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया जाना उपयोगी है।

Q (1) अनुवाद की परिभाषा देते हुए, इसकी विशेषतायें एवं विभिन्न विधियों की व्याख्या कीजिए।

Ans:- पूरे विश्व में असंख्य भाषायें बोली जाती हैं। आज वैश्वीकरण का युग है। प्रत्येक व्यक्ति देश, गाँव आदि सब आपस में किसी न किसी रूप में संबंध बनाये हुए है। अतः किसी व्यक्ति का सभी से उन्हीं भाषा में बात करना संभव नहीं है। परन्तु अपनी बात को दूसरे तक सम्प्रेषित करने के लिए एक माध्यम उपलब्ध है और वह है अनुवाद। अर्थात किसी एक भाषा से विचारों को दूसरी भाषा में परिवर्तित कर देना अनुवाद कहलाता है।

-: अनुवाद की परिभाषायें :-

डॉ० पवन मलिक के अनुसार - " एक भाषा के विचारों को भावों में परिवर्तन न करते हुए किसी अन्य भाषा में उन भावों सहित परिवर्तित कर देना अनुवाद कहलाता है।"

अतः अनुवाद एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से हम अपनी बात दूसरों तक आसानी से सम्प्रेषित कर सकते हैं। अनुवाद दो प्रकार के होते हैं।

(क) भाषागत अनुवाद - " किसी भाषा में लिखे या बोले गये भावों व विचारों को किसी अन्य भाषा में बोलना या लिखना भाषागत अनुवाद है।

(ख) विधागत अनुवाद :- साहित्य की विभिन्न विधाओं (गद्य, पद्य आदि) में व्यक्त विचारों को अपने शब्दों में [redacted] अन्य भाषा में व्यक्त करने को विधागत अनुवाद कहते हैं।

अनुवाद का महत्व

साहित्य समाज का दर्पण होता है जिससे दूसरे समाज की संस्कृति का बोध होता है। इस प्रकार अन्य देशों की सभ्यता, संस्कृति व प्रगति के ज्ञान का आधार भाषानुवाद ही है। मानव समाज व राष्ट्र के विकास के लिए भाषानुवाद का विशेष महत्व है।

अनुवाद की विशेषतायें

भाषागत व विधागत अनुवाद के आधार पर अनुवाद की निम्न विशेषतायें होनी चाहिए।

① दोनों भाषाओं के व्याकरण का बोध व उपयोग होना चाहिए।
② भाषाओं की ध्वनियों व लिपियों का ज्ञान हो।
③ भाषाओं के मौलिक रूपान्तर व शब्दावली का ज्ञान होना चाहिए।

(4) भाषा के व्याकरण, शब्दावली, वर्तनी आदि का ज्ञान होना चाहिए।
(5) भाषा में वाचन व लेखन की स्वाभाविकता होनी चाहिए।
(6) भाषा अभिव्यक्ति की बोधगम्यता होनी चाहिए।

अनुवाद शिक्षण की विधियाँ

(1) ग्रंथ विधि :- ग्रंथ विधि में बालकों के पाठ्यक्रम में एक ग्रंथ दे दिया जाता है जिसके वाक्यों को एक एक करके अनुवाद करना होता है। सर्वप्रथम बालकों को सरल वाक्यों का अनुवाद करने के लिए दिये जाते है। यह कार्य बालकों को अध्यापक के निर्देशन में पूरा करना होता है। अध्यापक छात्रों के मानसिक स्तर के अनुसार वाक्यों की कठिनता बढ़ाता हुआ सिखाता है।

(2) पाठ्य पुस्तक विधि - छात्र पुस्तक विशेष का पाठ्यक्रम के अनुसार पठन करते है। नित्यप्रति बालक उस पुस्तक का अध्ययन करते है और उसी भाषा को आत्म सात करने का प्रयास करते है। धीरे-धीरे छात्र उसी भाषा को सीख जाता है और आवश्यकता पड़ने पर उसी भाषा में अन्य भाषाओं का अनुवाद करने लगता है।

(3) तुलना विधि - तुलना विधि के माध्यम से बालक किसी भाषा की अन्य भाषा से तुलना करते है। तुलना करके ही सीखने का प्रयास करते है।

(4) अनुकरण विधि - अनुकरण विधि में छात्र के सामने अध्यापक उसी भाषा का प्रयोग करता है जो उसे छात्रों को सीखनी होती है। दैनिक जीवन से संबंधित एवं विषय से संबंधित शब्दों को छात्र अनुकरण के माध्यम से शीघ्र सीखते है और अध्यापक के अनुसार ही बोलने का अभ्यास एवं प्रयास करते है।

(5) अभ्यास विधि - अनुवाद शिक्षण को हम अभ्यास के माध्यम से भी प्रभावी बना सकते है। अभ्यास विधि के माध्यम से बालक को नित्य प्रति एक पाठ को अनुवाद करने के लिए देते है।

(6) दुभाषिया विधि - दुभाषिया शिक्षण विधि की एक उपयोगी विधि है। दुभाषिया विधि औपचारिक सम्मेलनों एवं आयोजनों में अधिक प्रभावी विधि है। इस विधि में एक बालक हिन्दी में बोलता जाए और उसी विषय वस्तु को दूसरा छात्र अँग्रेजी, संस्कृत या अन्य भाषा में परिवर्तित करता जाए। इसके माध्यम से छात्र सुनेंगे तथा सीखेंगे।

(7) समन्वयात्मक विधि :- उपर्युक्त सभी विधियों को मिलाकर छात्रों को अनुवाद की शिक्षा दे सकते है। अभ्यास विधि, दुभाषिया विधि, तुलना विधि, ग्रन्थ विधि, पाठ्यपुस्तक विधि, अनुकरण विधि को कहीं पर भी किसी समय पर प्रयोग किया जा सकता है।

=

Q (10.) गृहकार्य का अर्थ बताइए। गृहकार्य के उद्देश्य बताइये। गृहकार्य संशोधन की विधियां बताइए।

Ans:- गृहकार्य का अर्थ :- गृहकार्य का शाब्दिक अर्थ है - "घर पर किया जाने वाला कार्य"। गृह कार्य वह कार्य है जो शैक्षिक निर्देशन की पूर्ति के लिए, घर पर करने के लिए छात्रों को दिया जाता है। यह दो प्रकार का होता है। (क) घर पर जो काम लिख कर लाना होता है उसे लिखित गृह कार्य (ख) जो याद करके आना होता है उसे मौखिक गृहकार्य कहा जाता है।

गृहकार्य की परिभाषा

डॉ० उमा मंगल के अनुसार - "शिक्षण प्रक्रिया में गृह कार्य से अभिप्राय उस कार्य से है - जो पाठ के शिक्षण के उपरान्त, अध्यापक विद्यार्थियों को घर पे करके लाने के लिए देता है।"

गृहकार्य के उद्देश्य

(1) स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करना :- बच्चों को ऐसा अवसर प्रदान करना कि वे व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्रता पूर्वक कार्य कर सकें जिससे उनमें आत्मविश्वास का विकास हो।

(2) अध्यापक व अभिभावक के बीच की कड़ी - गृहकार्य के द्वारा अध्यापक व माता-पिता के मध्य सम्पर्क स्थापित होता है और अभिभावक सतुष्ट होते हैं जिससे उनका अध्यापक के प्रति विश्वास दृढ़ होता है।

(3) कमजोर बालकों की उन्नति में सहायक - कई बार कुछ बच्चों का स्कूल में समय पर कार्य पूरा नहीं हो पाता और वे पिछड़ जाते हैं। गृहकार्य का उद्देश्य उन बालकों को पर्याप्त अवसर प्रदान करना होना चाहिए।

(4) खाली समय का सदुपयोग - प्राय: देखा गया है कि बच्चे घर पर अपना खाली समय व्यर्थ की बातों में नष्ट कर देते हैं। पर गृह कार्य उन्हें खाली समय का सदुपयोग करने की प्रेरणा देता है।

(5) स्कूल के कार्य को दोहराना :- बच्चे स्कूल में जो सीखते हैं। यदि उसे घर जाकर दोहरा लेते हैं तो वह ज्ञान स्थायी हो जाता है। अत: गृह कार्य का उद्देश्य कक्षा कार्य की पुनरावृत्ति करना है।

गृहकार्य का स्वरूप

गृह कार्य देते समय अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए की जिस कक्षा के छात्रों को यह कार्य दिया जा रहा है। उनका मानसिक स्तर किस प्रकार का है। वे किस स्तर पर कार्य आसानी से कर सकते हैं

गृहकार्य देते समय उसका स्वरूप स्पष्ट, भाषा सरल व सुबोध हो जिससे छात्र को समझने में आसानी हो। साथ ही वह रोचक हो जिससे छात्र को वो बोझिल व अनावश्यक न लगे तथा उस कार्य को कक्षा में एक बार स्पष्ट भी कर देनी चाहिए।

गृहकार्य का संशोधन

अध्यापक द्वारा दिए गए गृहकार्य को जब छात्र पूरा करके लाते हैं तो अध्यापक उसके गृह कार्य की जाँच-पड़ताल करते हैं। वह छात्रों के गृहकार्य की त्रुटियों को ढूंढ करता है तथा सुधार के लिए सुझाव देता है। वास्तव में यह त्रुटियों का शुद्धिकरण ही गृहकार्य का संशोधन कहलाता है।

गृहकार्य के संशोधन की विधियाँ :-

(1) वैयक्तिक संशोधन विधि :- इस विधि में अध्यापक एक-एक करके सभी विद्यार्थियों की कॉपियाँ जाँचता है। जाँच करते समय अध्यापक अशुद्धियों पर निशान लगाने के साथ-साथ उनके शुद्ध रूप भी लिख देता है। इस प्रकार की विधि में सभी छात्रों को अपनी गलतियों का पता चल जाता है।

(2) सम्पर्क विधि :- संशोधन की यह विधि सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इस विधि में अध्यापक एक-एक छात्र को अपने पास बुलाकर उसके सामने कॉपियों जाँचता है। वह बालक को उसकी गलतियाँ बताता है व शुद्ध रूप से अवगत कराता है। इस विधि में श्रम व शक्ति अधिक लगती है। यह विधि अधिक छात्रों वाली कक्षा के लिए उपयुक्त नहीं है।

(3) सामूहिक संशोधन विधि :- इस विधि में अध्यापक सामूहिक रूप से छात्रों के गृहकार्य में होने वाली साधारण गलतियों को कक्षा में बताते हैं। जिससे छात्र अपनी गलतियों से परिचित होते हैं। यह विधि अधिक श्रम साध्य नहीं है।

(4) मिश्रित विधि – संशोधन के लिए यह एक अच्छी विधि है। इसमें अध्यापक क्रम पूर्वक 3-4 छात्रों को एक-एक करके खड़ा करते हैं। वे छात्र बारी-बारी अपना गृहकार्य पढ़ते हैं। अध्यापक उनके कार्य को सुनता है तथा जाँच करता है। समस्त कक्षा को उनकी गलतियों से अवगत कराता है जिससे अन्य छात्र भी अपनी गलतियाँ जान जाते हैं।

(5) पारस्परिक संशोधन विधि – इस विधि में छात्रों को परस्पर एक-दूसरे की गलतियाँ निकालने के लिए कहा जाता है किन्तु शैक्षिक दृष्टि से यह विधि उपयोगी नहीं है क्योंकि इससे छात्रों में ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई-झगड़े उत्पन्न होने की संभावनायें रहती हैं।

इस प्रकार यदि अध्यापक गृहकार्य की जाँच नियमित रूप से सावधानीपूर्वक उचित विधि से करता है तो उससे सभी छात्र लाभान्वित होते हैं।

Q (11.) पाठ्यक्रम का अर्थ बताइए। पाठ्यक्रम निर्माण की आवश्यकता व विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या करें।

Ans ⇒ पाठ्यक्रम की आवश्यकता — शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। जो सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक नियंत्रण के लिए प्रभावी यंत्र है। जीवन से संबंधी सभी प्रकार के अनुभवों का समावेश इसी पाठ्यक्रम के अंतर्गत किया जाता है और यही अधिगम अनुभव छात्रों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने में सहायक होता है। हिन्दी भाषा का ज्ञान छात्रों को कैसे प्रदान किया जाये? और इस दिशा में वे कैसे आगे बढ़े? इसका निर्धारण पाठ्यक्रम के आधार पर किया जाता है।

हिन्दी पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत — हिन्दी के पाठ्यक्रम का निर्माण करना एक जटिल कार्य है क्योंकि पाठ्यक्रम निर्माण के कोई निश्चित व कठोर सिद्धांत नहीं बनाए जा सके। इसके संबंध में सदा कुछ सुझाव हैं जिनको पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय ध्यान में रखना चाहिए :—

(1) बाल केन्द्रिता का सिद्धांत — पाठ्यक्रम का निर्माण करने से पहले शिक्षक को यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि छात्रों की रुचि, क्षमता, आयु तथा मानसिक स्तर कैसा है? यदि पाठ्यक्रम निर्माण में इन बातों का ध्यान नहीं रखा जाता है तो ऐसा पाठ्यक्रम बालकों के लिए रुचिकर नहीं होगा तथा अधिगम भी बहुत कम होगा। अतः पाठ्यक्रम बालकों की रुचि व आवश्यकता के अनुरूप होना चाहिए।

(2) उपयोगिता — पाठ्यक्रम में ऐसे बिन्दु रखे जाये जो बालकों के जीवन में उनके लिए उपयोगी हों। पाठ्यक्रम में वह सब रखा जाये जो भूत के साथ-साथ वर्तमान व भविष्य में भी काम हो और समय की माँग के अनुरूप हो।

(3) विविधता व लचीलेपन का सिद्धांत - हमारा समाज दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है। इस बदलते समाज के साथ इनकी आवश्यकतायें भी बदलती जा रही हैं। जिसका प्रभाव शिक्षा के उद्देश्यों पर भी पड़ता है। इसलिए पाठ्यक्रम बनाते समय समाज की आवश्यकताओं के अनुसार तथा लचीलेपन का ध्यान रखना चाहिए। पाठ्यक्रम में विविधता बालकों में रुचि जाग्रत करने में सहायक होती है जिससे उनके ज्ञान का सहज विकास होता है।

④ सृजनात्मकता / रचनात्मकता का सिद्धांत - पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम केवल ऐसा न हो जो बालकों को मात्र पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करे बल्कि उसमें कुछ ऐसे भी विषय सम्मिलित किए जाये जिससे बालक स्वयं कुछ रचनात्मक कार्य करने के लिए लालायित हो।

⑤ जीवन के लिए तैयारी का सिद्धांत - शिक्षा मनुष्य के वर्तमान को स्पष्ट करते हुए उसे भावी जीवन के लिए तैयार करे। अतः पाठ्यक्रम ऐसा न हो जिसकी उपयोगिता आज है कल नहीं। पाठ्यक्रम इस प्रकार से निर्मित किया जाये जिससे बालक भविष्य के लिए तैयार हो सके तथा समायोजित हो सके।

Q (12.) अध्यापक के गुण एवं कर्तव्यों का वर्णन करें।

अध्यापक

Ans. किसी भी शिक्षा प्रणाली में अध्यापक का स्थान मुख्य होता है। सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली अध्यापक के चारों ओर ही घूमती है। प्राचीन वैदिक काल में गुरु को अध्यात्मिक पिता माना जाता था। एक अध्यापक बच्चों की बौद्धिक, आध्यात्मिक क्षमताओं का विकास करता है और अज्ञान रूपी अँधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। यह अध्यापक ही है जो कि जीवन को जीने के योग्य बनाता है, वह समाज निर्माता है, राष्ट्र निर्माता है। प्लेटो, अरस्तू, सुकरात, नानक, विवेकानंद, महात्मा गाँधी जैसे समाज सुधारक अध्यापक जिन्होंने समाज को नयी दिशा प्रदान की। आज भी पाश्चात्य देशों ने इनकी महानता को स्वीकार किया है।

प्राचीन वैदिक परम्परा में भी कहा गया है कि "गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरु र्देवो महेश्वर, गुरु साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः" अर्थात गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही परमेश्वर है, गुरु ही साक्षात पर ब्रह्म है, ऐसे गुरु को नमस्कार है।

डॉ० जाकिर हुसैन के अनुसार - "निःसन्देह अध्यापक हमारे भविष्य का निर्माता है।"

अच्छे अध्यापक के गुण

शिक्षा पद्धति में अध्यापक को एक सशक्त तत्व समझा जाता है। कोठारी कमीशन ने अध्यापक के संबंध में कहा है - "शिक्षा के स्तर तथा राष्ट्रीय विकास में सहयोग को प्रभावित करने वाले सभी विभिन्न तत्वों में अध्यापक का गुण होना चाहिए और उसकी योग्यता ही

अत्यधिक महत्वपूर्ण है।"

एक अध्यापक को राष्ट्र निर्माता माना जाता है। हुमायूँ, कबीर अध्यापक को राष्ट्र का भाग्य निर्माता कहते है। उनका संबंध उन बच्चों के साथ होता है जिन्हें कलकर्ता बनना है। राष्ट्र का महत्व विद्या के मंदिर में शिक्षा प्राप्त कर रहे भावी नागरिकों पर निर्भर करता है। राष्ट्र निर्माण का दायित्व अध्यापकों पर ही है।

अध्यापक का चरित्र आदर्श होना चाहिए। वे बच्चों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें तथा वे दूरदर्शी व आशावादी दृष्टिकोण रखते हो। क्योंकि एक अच्छा अध्यापक बच्चों के लिए आदर्श होता है और बच्चे उसे आदर्श व्यक्ति के रूप में देखते है जो कि अपने ज्ञान तथा बुद्धि कौशल से साधारण व्यक्तियों से बहुत आगे है। अध्यापक को कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए कि जिससे कि छात्र - छात्राओं की भावनाओं को कोई आहत पहुँचे। एक अध्यापक बच्चों की रुचियों, आदतों व व्यवहारों तथा उनके चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक अच्छी शिक्षा देने के लिए अच्छे अध्यापक का होना आवश्यक है उसे स्वयं गुण सम्पन्न होना चाहिए। यदि वह स्वयं गुणसम्पन्न होगा तभी वह मानव जाति की सेवा कर सकेगा।

अध्यापक की भूमिका एवं कर्तव्य

कक्षा कक्ष प्रबंधन में एक अध्यापक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है। उसे एक अध्यापक, एक प्रबंधक, एक दार्शनिक, एक मनोवैज्ञानिक, एक नेता, एक निर्देशक, एक अनुसंधानकर्ता की भूमिका निभानी पड़ती है। एक अध्यापक को शिक्षण के साथ - साथ अन्य पाठ्यसहगामी क्रियाओं की भी जानकारी होनी आवश्यक है। उसे विद्यार्थियों, सहकर्मियों व संस्थान के प्रधान सभी लोगों के साथ सामाजिक संबंध कायम करना होता है। कक्षा कक्ष प्रबंधन में अध्यापक की निम्न भूमिकायें महत्वपूर्ण है -

(1) एक अच्छा प्रबंधक - एक शिक्षक के लिए अच्छा प्रबंधक होना आवश्यक है। कक्षा-कक्ष में आवश्यक सामग्री का प्रबंध करना तथा उसका ठीक से रख-रखाव करना तथा सीमित साधनों का समुचित प्रयोग करना एक प्रबंधक का कार्य है। एक शिक्षक से आशा की जाती है कि वह उपलब्ध संसाधनों का कुशलतम उपयोग करे।

(2) एक अच्छा अध्यापक - एक अध्यापक के व्यक्तित्व में वे सभी

गुण होने चाहिए जो कि एक कुशल अध्यापक में हो, उसका व्यवहार कार्य-करने के तरीके, उसकी भाषण शैली, विषय का ज्ञान, छात्र से सहयोगात्मक व्यवहार, कक्षा नियंत्रण आदि गुणों से पूर्ण हो।

③ एक अच्छा नेतृत्वकर्ता - शैक्षिक नेतृत्व का कार्य अध्यापक का होता है उसे शिक्षण तथा पाठ्यसहगामी क्रियाओं की जानकारी होनी चाहिए तथा उन्हें कब आयोजित किया जाना चाहिए, इसका ज्ञान आवश्यक है। इसलिए अध्यापक को एक अच्छा नेता भी होना आवश्यक है।

④ एक अच्छा अनुसंधानकर्ता - एक अच्छे अध्यापक को अच्छा अनुसंधानकर्ता होना चाहिए जो बच्चों की समस्याओं का समाधान क्रियात्मक रूप से कर मार्गदर्शन दे सकता है जो कि कक्षा-कक्ष से वातावरण को स्वस्थ बनाने में सहायक होता है।

इस प्रकार अध्यापक का कक्षा-कक्ष प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। अध्यापक का समर्पण, विषय-वस्तु पर स्वामित्व और शिक्षण की मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग कक्षा में श्रेष्ठता लाता है। कक्षा-कक्ष की क्रियाओं का प्रबंधन करने में अध्यापक शिक्षण प्रशिक्षण और अनुदेशन का प्रभावपूर्ण उपयोग कर सकता है।

=

Q (13.) हिन्दी पाठ्य वस्तु एवं शिक्षा शास्त्रीय विश्लेषण को विस्तार से बताइए।

Ans. - पाठ्य वस्तु :- पाठ्य-वस्तु में किसी कक्षा विशेष में निर्धारित पाठ्य-विषयों से संबंधित क्रियाओं का समावेश होता है। अतः हिन्दी पाठ्य-वस्तु का तात्पर्य हिन्दी विषय-वस्तु के विवरण से है जो शिक्षक के लिए इस उद्देश्य के साथ तैयार किया जाता है कि वह अपने शिक्षार्थियों को उसका भली-भाँति ज्ञान प्रदान कर सके।

पाठ्यवस्तु का अर्थ स्पष्ट करते हुए "हेनरी हेरप" ने कहा है - "पाठ्य वस्तु केवल मुद्रित संदर्शिका है जो यह बताती है कि छात्रों को क्या सीखना है। पाठ्यवस्तु की तैयारी पाठ्यक्रम के विकास के कार्य का एक तर्कसंगत सोपान है।"

हिन्दी पाठ्य वस्तु हिन्दी विषय के लिए अधिगम एक क्षेत्र विशेष पर पाठ्यक्रम का एक परिष्कृत व विस्तृत रूप होता है। हिन्दी पाठ्य-वस्तु में हिन्दी विषय से संबंधित ऐसे अनुभव तथा अध्ययन सामग्री शामिल होती है जिसके अध्ययन से हिन्दी विषय के शिक्षण संबंधी विभिन्न

उद्देश्यों की प्राप्ति संभव हो जाती है।

छात्र पाठ्य वस्तु के माध्यम से अनेक प्रकार के अधिगम अनुभव प्राप्त करते हैं। शिक्षक भी पाठ्य वस्तु के माध्यम से अपने शिक्षण को नियोजित करता है तथा छात्रों को अपेक्षित अधिगम अनुभवों को ग्रहण करने में सहायता पहुँचाने का प्रयास करता है।

शिक्षा शास्त्रीय विश्लेषण

शिक्षा शास्त्र एक प्राचीन सम्प्रत्यय है। शिक्षा तकनीकी के कारण शिक्षा शास्त्र का शिक्षा के क्षेत्र में पुनः उद्भव हुआ है। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में विश्लेषण मूल रूप से शिक्षा शास्त्र एवं शिक्षा तकनीकी से संबंधित है। किस तरह छात्रों को नीरस व्याकरण, नाटक, एकांकी का अध्ययन कराया जाए। इसके लिए शिक्षा-शास्त्र विश्लेषण विधि अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। शिक्षा केन्द्र क्षेत्र में तकनीकी शब्दों का प्रयोग 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आया। इसके साथ ही शिक्षा शास्त्र की भी चर्चा होने लगी। शिक्षा तकनीकी और शिक्षा शास्त्र दोनों सम्प्रत्यय एक दूसरे से भिन्न है।

शिक्षा तकनीकी का अर्थ

शिक्षा में वैज्ञानिक नियमों, सिद्धांतों, उपकरणों का प्रयोग शिक्षा तकनीकी कहलाता है। तकनीकी से शिक्षा को सरल, सहज एवं बोधगम्य बनाया जाता है। तकनीकी प्रतिभाशाली, सामान्य, मंदबुद्धि बालकों के मस्तिष्क तक ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष को पुष्ट बनाने का साधन है, या प्रत्येक अधिगमकर्ता तक शिक्षा को ले जाने में सहायता प्रदान करती है।

शिक्षा - शास्त्र का अर्थ

शिक्षा शास्त्र का शाब्दिक अर्थ है - "शिक्षण का विज्ञान"। सरल अर्थों में कहा जा सकता है कि अच्छे शिक्षण से संबंधित उन सभी बातों का ज्ञान जिसके द्वारा हम शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल होते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक ज्ञान एवं कौशल शिक्षा शास्त्र द्वारा प्रदान किया जाता है। जैसे तकनीकी का अर्थ वैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धांतों से है। उसी प्रकार शिक्षा शास्त्र में शिक्षण और कला दोनों का ही महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षण का शुद्ध ज्ञान अभ्यास के बाद होता है। एक दीर्घ अनुभव (शिक्षण - अनुभव) से शिक्षण में नई सूझ का विकास होता है। एक शिक्षण कर्ता अपने अनुभवों के द्वारा शिक्षण में कलात्मक

एवं वैज्ञानिक दोनों ही पक्षों को सिद्ध करता है।

विश्लेषण का अर्थ

एकत्रित वस्तुओं को अलग - अलग करना।

शिक्षा शास्त्रीय विश्लेषण

शिक्षा शास्त्र विश्लेषण दो शब्दों से मिलकर बना है - शिक्षा शास्त्र + विश्लेषण। शिक्षा शास्त्र विश्लेषण से अर्थ ऐसे विश्लेषण से है जो शिक्षा शास्त्र पर आधारित होता है अर्थात वह विश्लेषण जिसके द्वारा किसी विषय की विषय वस्तु के शिक्षण कार्य हेतु शिक्षण विज्ञान के नियमों को आधारित बनाया जाए।

हिन्दी कि किसी पाठ्य-वस्तु का शिक्षा - शास्त्र के नियमों को आधार मानकर किया जाने वाला विश्लेषण ही हिन्दी की पाठ्य - वस्तु का शिक्षा शास्त्रीय विश्लेषण कहलाता है।

किसी विषय के पाठ्यक्रम, इकाई तथा प्रकरण की विषय - वस्तु को उसके भागों में केवल उसके क्रमिक रूप से व्यवस्थित व संगठित करने के लिए बाँटा जाए तब इसे पाठ्य - वस्तु का विश्लेषण कहा जाएगा। परन्तु जब विषय - वस्तु विश्लेषण को शिक्षण - विज्ञान की मर्यादाओं तथा सिद्धांतों के आधार पर किए जाए तो उसे शिक्षा शास्त्र विश्लेषण कहा जाएगा।